जल क्षेत्र में पीपीपी के अनुभव

गौरव द्विवेदी

भारत दुनिया की चौथी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था है। साथ ही चीन के बाद दुनिया की दूसरे नंबर की तेज़ी से बढ़ती अर्थव्यवस्था भी है। पड़ोसी देश चीन को टक्कर देने के लिए राष्ट्रीय सकल आय की वृद्धि दर दहाई में होनी चाहिए। इसके लिए बड़े पैमाने पर अधोसंरचना की आवश्यकता है लेकिन बुनियादी ढांचा खड़ा करने हेतु हमारी सरकार के पास पैसा नहीं है, इसलिए बड़े पैमाने पर निजी निवेश को आकर्षित किया जा रहा है।

सरकार के अनुसार देश में सड़कें, विद्युत, बंदरगाह, जल प्रदाय एवं स्वच्छता जैसी सुविधाओं का अभाव है। विकास दर में बढ़ोत्तरी के लिए बुनियादी ढांचे में बड़े निवेश की आवश्यकता है। भारत सरकार ने इन बुनियादी सुविधाओं के लिए वर्ष 2006 से 2012 के बीच प्रति वर्ष कम से कम ढाई लाख करोड़ रुपए की दर से करीब 21 लाख करोड़ रुपए के निवेश का अनुमान किया है। इस ज़रूरत की पूर्ति के लिए युरोप, कनाडा आदि देशों का मॉडल सामने लाया गया। यह मॉडल है सार्वजनिक-निजी भागीदारी यानी पब्लिक-प्रायवेट पार्टनरशिप (पीपीपी)। इस मॉडल के तहत हर क्षेत्र में निजी कंपनियों को प्रवेश करवाया जा रहा है। इसमें अनुबंधकर्ता निजी कंपनी को बगैर किसी राजनैतिक या सामाजिक ज़िम्मेदारी के लंबे समय के लिए सुनिश्चित कमाई का अधिकार दे दिया जाता है। अनुबंध करने वाली कंपनियों को 25 वर्षों तक क्षेत्र से होने वाली आय पर अधिकार दे दिया जाता है।

पीपीपी क्यों?

दो दशक पहले तक सार्वजनिक सेवा प्रदाय के विकास के लिए शुद्ध निजीकरण का मॉडल प्रस्तावित था। इसमें पानी, बिजली, सड़क आदि क्षेत्रों में निजी कंपनियां पूंजी निवेश करती थीं और निवेशित राशि को मुनाफे सहित वसूल करती थीं। निजीकरण के पूर्व दावे किए गए थे कि इससे सेवा क्षेत्र में नए निवेश आएंगे, निजी क्षेत्र के कुशल प्रबंधन से सेवाएं बेहतर होने के साथ-साथ सस्ती भी होंगी, देश की अर्थव्यवस्था मज़बूत बनेगी। पानी के क्षेत्र में यह मॉडल लेटिन अमरीका, दक्षिण-पूर्व एशिया, कनाडा और युरोप के देशों में खूब चला। दुनिया की 100 बड़ी कंपनियों में शुमार सुएज़, विओलिया और सौर जैसी पानी का व्यवसाय करने वाली कंपनियों ने दुनिया के कई देशों के पानी के निजीकरण के अनुबंध किए। लेकिन निजीकरण के फायदों के आश्वासन पूरे न होने के कारण अर्जेन्टाइना और फिलिपींस सरकारों को विवादास्पद स्थिति का सामना करना पड़ा। लेटिन अमरीका में सामाजिक अशांति की स्थिति निर्मित हो गई थी। जन आंदोलन खड़े हो गए। बोलीविया में तो पानी के निजीकरण से उपजे जन-आक्रोश ने वहां की मौजूदा सरकार को ही बदल दिया और निजी कंपनियों को भागना पड़ा। यह न सिर्फ निजीकरण के मॉडल की असफलता थी बल्कि निजी कंपनियों की विकासशील देशों में पानी का बाज़ार खड़ा कर उससे मोटी कमाई करने की उम्मीदों को बड़ा झटका था।

इसके बाद विश्व बैंक और अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोश जैसी निजीकरण की पोषक एजेंसियों को भी स्वीकार करना पड़ा कि निजीकरण की प्रक्रिया में खामियां रही हैं। विओलिया, सुएज़ और सौर ने भी स्वीकार किया है कि जल क्षेत्र में निजीकरण का मॉडल नहीं चल सकता।

जल क्षेत्र में निजीकरण की असफलता के बाद इन कंपनियों ने विश्व बैंक, एशियाई विकास बैंक, अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोश जैसी निजीकरण की हिमायती अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं के माध्यम से निवेश की रणनीति बदलने हेतु तीसरी दुनिया के देशों पर दबाव डाला। नई रणनीति के तहत पीपीपी को सामने लाया गया जिसके तहत पूंजी निवेश सार्वजनिक क्षेत्रों से आता है तथा इस निवेश पर निजी कंपनियां लंबे समय के लिए सुनिश्चित लाभ और इंसेंटिव (प्रोत्साहन राशि) कमाती है।

भारतीय परिदृश्य

वित्त मंत्रालय के आर्थिक मामला विभाग के मुताबिक

इस समय देश में सड़क, विमानन, बंदरगाह, पानी आदि क्षेत्रों में करीब 450 पीपीपी परियोजनाओं पर काम चल रहा है। इसमें करीब डेढ़ लाख करोड़ रुपए का निवेश हुआ है। पानी क्षेत्र की प्रमुख पीपीपी परियोजनाओं में विशाखापट्टनम, खण्डवा, देवास, तिरूपुर वगैरह शामिल हैं।

भारत सरकार ने पीपीपी को बढ़ावा देने के लिए आर्थिक मामलों के मंत्रालय में एक अलग प्रकोष्ठ बनाया है। साथ ही मंत्रियों का एक समूह भी बनाया गया है। वाएबिलिटी गैप फण्डिंग के कदम उठाए गए हैं। परियोजना विकास कोश (आईआईपीडीएफ), इण्डिया इन्फ्रास्ट्रक्चर फाइनेंस कॉर्पोरेशन लिमिटेड (आईआईएफसीएल) जैसे ढांचे बनाए गए हैं।

पीपीपी क्या है?

पीपीपी की कोई परिभाषा नहीं है। यह एक व्यापक जुम्ला है जिसमें निर्माण, संचालन और संधारण, प्रबंधन अनुबंध, सेवा अनुबंध, ठेकेदारी आदि कुछ भी हो सकता है। लेकिन इसमें भागीदारी जैसा कुछ भी नहीं है। कुछ देशों में इसे प्रायवेट फाइनेंस इनिशिएटिव (पीएफआई), आल्टरनेटिव फाइनेंस आदि नामों से भी जाना जाता है। इसमें सरकार और सेवा प्रदाता कंपनी के बीच अनुबंध होता है जिसमें उपभोक्ताओं से सेवा शुल्क के भुगतान की शर्त होती है। किसी वर्ग के उपभोक्ताओं द्वारा कम सेवा शुल्क का भुगतान करने अथवा भुगतान न करने की स्थिति में सेवा प्रदाता कंपनी को भरपाई के लिए सरकारी अनुदान दिया जाता है। इस पर नियंत्रण के लिए नियामक तंत्र की व्यवस्था होती है लेकिन सामान्यतः नियामक तंत्र तक आम लोगों की पहुंच बहुत कठिन होती है। संचालन की दृष्टि से सार्वजनिक क्षेत्र और पीपीपी अनुबंध में कोई अंतर नहीं होता है। पीपीपी में भी करदाताओं का ही धन उपयोग किया जाता है। इंसेंटिव तथा अन्य सहयोग सरकार ही उपलब्ध करवाती है।

पीपीपी की भ्रांतियां

1. सस्तेपन की भ्रांति - पीपीपी/निजीकरण के सम्बंध में तर्क दिया जाता है कि परियोजनाओं में आवश्यक पूंजी निवेश सेवा प्रदाता कंपनी करती है इसलिए सरकार पर पूंजी निवेश का बोझ नहीं पड़ता। सच्चाई यह है कि अव्वल तो निजी कंपनियां खुद के धन का निवेश नहीं करती हैं। यदि करती भी हैं तो फिर निवेशित धन, कर्ज़ पर ब्याज़, संचालन-संधारण खर्च और मुनाफा अनुबंध की छोटी-सी अवधि में ही निकालना होता है। इसलिए परियोजना महंगी हो जाती है और इसी कारण से सेवा दरें भी बढ़ जाती हैं। इसके विपरीत सरकार द्वारा निवेश होने पर वापसी की दर काफी लंबी अवधि की होती है और उद्देश्य मुनाफा कमाना नहीं होता है।

2. सार्वजनिक क्षेत्र की असफलता की भ्रांति - निजी कंपनियों को बढ़ावा देने के लिए सरकार स्वयं सार्वजनिक क्षेत्र की कार्यक्षमता कम होना बताती है। निजी कंपनियों की कार्यक्षमता को बेहतर बताया जाता है। लेकिन निजीकरण के हिमायती विश्व बैंक, अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोश और पब्लिक प्रायवेट इन्फ्रास्ट्रक्चर एडवायज़री फेसीलिटी (पीपीआईएएफ) जैसी अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय एजेंसियों के अध्ययनों के मुताबिक निजी क्षेत्र और सार्वजनिक क्षेत्र की कार्यक्षमता में कोई अंतर नहीं है। मुंबई मेट्रो, हैदराबाद मेट्रो, तिरूपुर और देवास औद्योगिक जल प्रदाय आदि परियोजनाओं से स्पष्ट हुआ है कि निजी कंपनियां भी समय पर परियोजनाएं पूरी नहीं कर पाती हैं।

3. पूंजी व्यवस्था की भ्रांति - पीपीपी से निजी निवेश बढ़ाने के दावे किए जा रहे हैं लेकिन वास्तविकता इसके विपरीत है। निजी कंपनियां पानी के क्षेत्र में कोई जोखिम नहीं लेना चाहती, इसलिए पीपीपी मॉडल को आगे बढ़ाया जा रहा है। पीपीपी परियोजनाओं में 90 प्रतिशत तक सार्वजनिक पूंजी लगती है जिससे मुनाफा निजी कंपनियां कमाती हैं।

4. जोखिम की भ्रांति - निजी कंपनियां कोई जोखिम अपने सिर नहीं लेना चाहती हैं। पीपीपी में अधिकांश निवेश सरकारी होता है तथा सुनिश्चित लाभ की गारंटी भी सरकार ही देती है। ज़्यादातर मामलों में निजी कंपनियां कोई ज़िम्मेदारी नहीं लेतीं। अनुबंध पश्चात शर्तों में बदलाव निजी कंपनियों के लिए आम बात है।

5. संचालन - निजी कंपनियां पारदर्शिता और जवाबदेही से बचती है। इनकी परियोजनाओं में जनभागीदारी का कोई

स्थान नहीं होता। विओलिया, सुएज़ जैसी ब्लेक लिस्टेड कंपनियों से उनके काले कारनामों की अनदेखी कर बड़े अनुबंध किए जा रहे हैं। कंपनियां श्रम कानूनों का पालन नहीं करती। नियामक ढांचा या तो होता ही नहीं या होने पर भी न होने के बराबर होता है। नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक (सीएजी) ने दर्जनों सड़क परियोजनाओं के अध्ययन के बाद पाया कि राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण, जो निजी सड़क परियोजनाओं का एक नियामक है, ने निजीकरण हेतु अपने ही नियम-कायदों का उल्लंघन किया है जिससे सरकारी खज़ाने को भारी घाटा हुआ है।

देश में सबसे पहले बिजली क्षेत्र में निजीकरण हुआ है। बिजली क्षेत्र का बंटवारा उत्पादन, पारेषण और वितरण में किया गया। लेकिन निजीकरण के बाद के डेढ़ दशकों तक सेवा में कोई सुधार नहीं हुआ है। पारेषण और वितरण की हानियों में कोई उल्लेखनीय कमी नहीं आई है। दूसरी ओर, जवाबदेही कम हुई है। दरें तेज़ी से बढ़ाई जा रही हैं। लेकिन बिजली क्षेत्र के अनुभव से सीख न लेकर यही प्रक्रिया जल क्षेत्र में दोहराई जा रही है।

विकल्प

निजीकरण के विकल्पों पर कई देशों में काम चल रहा है। ये सारे विकल्प स्थानीय परिस्थितियों और ज़रूरतों के मुताबिक हैं। ब्राज़ील में समुदाय आधारित व्यवस्था कायम की गई है। बांग्लादेश में कर्मचारी यूनियन ने पहल कर निजीकरण का विकल्प तैयार किया है। बोलीविया में निजीकरण के दुखद अनुभवों के बाद जल सहकारिता के मॉडल पर सेवाएं दी जा रही है। फ्रांस में तो निजीकरण छोड़कर पुनः नगर निकायीकरण की प्रक्रिया जारी है। इस प्रक्रिया में ट्रेड यूनियनों की भूमिका अहम रही है। संक्षेप में, निजीकरण के विकल्प मौजूद हैं। तंत्र के प्रबंधन, निगरानी, नियंत्रण आदि बातों पर ध्यान देकर स्थानीय ज़रूरतों के आधार पर निजीकरण का विकल्प खड़ा किया जा सकता है। ***(स्रोत फीचर्स)***